

को जेल में? शायद नहीं, क्योंकि मैं पैरासाइट हूँ उनका, क्योंकि वे मेरे अपने पिता, भाई स्वजन, मित्र और औजार हैं। फिर यह शोध...? कितना गंदा मजाक है यह शोध! मेरे हाथ लहराते हैं और शोध की पूरी फाइल छपाक से गंगा में जा गिरती है। लगता है, सीने पर पड़ा हुआ अपराध का पहाड़ फिसलकर जा गिरा है गंगा में।

स्टेशन पर उतरते ही अगवानी के लिए आए विभागाध्यक्ष के साथ माँ को देखकर याद आता है...साधु ने शायद ठीक ही कहा था... कि मेरी मौत पानी में होगी!... पूरा भविष्य डुबा दिया है मैंने पानी में और विद्रूप में मेरे होंठ टेढ़े हो उठे हैं।

संजीव

- जन्म : 6 जुलाई, 1947, सुल्तानपुर, (उत्तर-प्रदेश)
- प्रकाशन : तीस साल का एक सफरनामा, आप यहाँ है, भूमिका और अन्य कहानियाँ, दुनिया की सबसे हसीन औरत, प्रेत मुक्ति, प्रेरणाश्रोत और अन्य कहानियाँ, ब्लैक होल, खोज, डायन और अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह) किशनगढ़ के अहेरी, सर्कस, सावधान नीचे आग है, धार, पाँव तले ही दूब, जंगल जहाँ शुरू होता है, सूत्रधार, आकाश चम्पा (उपन्यास)
- सम्मान : इंदु शर्मा कथा सम्मान, कथाक्रम सम्मान

पार्टीशन

—स्वयं प्रकाश

आप कुर्बान भाई को नहीं जानते? कुर्बान भाई इस कस्बे के सबसे शानदार शख्स हैं। कस्बे का दिल है आजाद चौक और ऐन आजाद चौक पर कुर्बान भाई की छोटी सी किराने की दुकान है। यहाँ हर समय सफेद कमीज-पजामा पहने दो-दो, चार-चार आने का सौदा-सुलफ माँगती बच्चों-बड़ों की भीड़ में घिरे कुर्बान भाई आपको नजर आ जाएँगे। भीड़ नहीं होगी तो उकड़ूँ बैठे कुछ लिखते होंगे। बार-बार मोटे फ्रेम के चश्मे को उंगली से ऊपर चढ़ाते और माथे पर बिखरे आवारा, अधकचरे बालों को दाएँ या बाएँ हाथ की उँगलियों में फँसा पीछे सहेजते। यदि आप यहाँ से सौदा लेना चाहें तो आपका स्वागत है। सबसे वाजिब दाम और सबसे ज्यादा सही तौल और शुद्ध चीज। जिस चीज से उन्हें खुद तसल्ली नहीं होगी, कभी नहीं बेचेंगे। कभी धोखे से दुकान में आ भी गई तो चाहे पड़ी-पड़ी सड़ जाए, आपको साफ मना कर देंगे। मिर्च? आपके लायक नहीं है। रंग मिली हुई आ गई है। तेल! मजेदार नहीं है। रेपसीड मिला है। दीया-बत्ती के लिए चाहें तो ले जाएँ।

यही वजह है कि एक बार जो यहाँ से सामान ले जाता है, दूसरी बार और कहीं नहीं जाता। यों चारों तरफ बड़ी-बड़ी दुकानें हैं—सिंधियों की, मारवाड़ियों की, पर कुर्बान भाई का मतलब है, ईमानदारी। कुर्बान भाई का मतलब है, उधार की सुविधा और भरोसा।

लेकिन एक बात का ध्यान रखिएगा जो सामान आप ले जा रहे हैं, उसका लिफाफा या थैली बगैर देखे मत फेंकिएगा। मुमकिन है उस पर कोई खुद्दार या खूंखार शेर लिखा हो। न जाने कितने लोग उनसे कह-कहकर हार गए कि गल्ले में एक कॉपी

रख लें, शेर होते ही फौरन उसमें दर्ज कर लें। कुर्बान भाई सुनते हैं, सहमत भी हो जाते हैं, जो चीजें खो गईं उन पर दुखी भी होते हैं, पर करते वही हैं।

मेरा भी इस शानदार आदमी से इसी तरह परिचय हुआ। दफ्तर से लौटते हुए कुर्बान भाई की दुकान में कोई चीज लेकर घर आया... लिफाफे पर लिखा था—

फ़कत पासे-वफादारी है, वरना कुछ नहीं मुश्किल।

बुझा सकता हूँ अंगारे, अभी आँखों में पानी है डू

और यह आदमी आज भी चार-चार आने के सौदे तौल रहा है! और क्यों तौल रहा है, इसकी भी एक कहानी है।

कुर्बान भाई के पिता का अजमेर में रंग का लंबा-चौड़ा कारोबार था। दो बड़े-बड़े मकान थे। हवेलियाँ कहना चाहिए। नया बाजार में खूब बड़ी दुकान थी। बारह नौकर थे। घर में बग्घी तो थी ही, एक 'बेबी ऑस्टिन' भी थी जो 'सैर' पर जाने के काम आती थी। संयुक्त परिवार था। पिता मौलाना आजाद के शैदाइयों में से थे। बड़े-बड़े लीडर और शायर घर आकर ठहरते थे। कुर्बान भाई उस वक्त अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में पढ़ रहे थे। न भविष्य की चिंता थी न बुढ़ापे का डर! मजे से जिंदगी गुजर रही थी। इश्क, शायरी, होस्टल, ख्वाब!

तभी पार्टीशन हो गया। दंगे हो गए। दुकान जला दी गई। रिश्तेदार पाकिस्तान भाग गए, दो भाई कत्ल कर दिए गए। पिता ने सदमे से खटिया पकड़ ली और मर गए। नौकर घर की पूँजी लेकर भाग गए। बच्चे-खुच्चों को लेकर अपनी जान लिए-लिए कुर्बान भाई नागौर चले गए। वहाँ से मेड़ता, मेड़ता से टौंका। कहाँ जाएँ? कहाँ सिर छिपाएँ? क्या पाकिस्तान चले जाएँ? नहीं गए। क्योंकि जोश नहीं गए, क्योंकि सुरैया नहीं गई, क्योंकि कुर्बान भाई को अच्छे लगने वाले बहुत से लोग नहीं गए। तो कुर्बान भाई क्यों जाते?

धीरे-धीरे घर की बिकने लायक चीजें सब बिक गईं और कहीं कोई काम, कोई नौकरी नहीं मिली, जो उस दौर में मुसलमानों को मिलना बेहद मुश्किल थी। तिस पर हुनर कोई जानते नहीं थे, तालीम अधूरी थी। आखिर एक सेठ के यहाँ हिसाब लिखने का काम करने लगे, लेकिन अपनी आदर्शवादिता, ईमानदारी, दयानतदारी, शराफत आदि दुर्गुणों के कारण जल्द ही निकाल दिए गए...। लेकिन मालिक होने का ठसका एक बार टूटा तो टूटता चला गया। स्थिति यह थी कि हिंदुओं में निभने की कोशिश करते तो शक-शुबहे की बर्छियों से छेद-छेद दिए जाते और मुसलमानों में खपने की

कोशिश करते तो लीगियों के धार्मिक उन्माद का जवाब देते-देते टूक-टूक हो जाते। ...उतरते गए ...मजदूरी तक, हम्माली तक छुटपुट कारीगरी तक ...इंसानियत तक। नए-नए काम सीखे। मजबूरी सिखा ही देती है। साइकिल के पंचर जोड़े, पीपों-कनस्तरो की झालन लगाई, ताले-छतरियाँ, लालटेनें ठीक कहीं... चूनरी-बंधेज की रंगाई में काम किया... हाथी दाँत की चूड़िया कार्टी... शहर दर शहर... अब हमला सांप्रदायिक उन्माद का नहीं, मशीन का हो रहा था... जो चीज पकड़ते... धीरे-धीरे हाथ से फिसलने लगती। धक्के खाते-खाते पता नहीं कब कैसे यहाँ इस कस्बे में आ गए और एक बुजुर्ग नमाजी मुसलमान से पचास रुपए उधार लेकर एक दिन यह दुकान खोल बैठे। ...कुछ पुड़ियों में दाल-चावल...माचिस...बीड़ी-सिगरेट-गोभी-चाकलेट...क्या बताऊँ? किस तरह बताऊँ? एक आदमी के दर्द और संघर्ष की तवील दास्तान का सिर्फ अपनी सुविधा के लिए चंद अल्फाज में निबटा देना... न सिर्फ ज्यादाती है, बल्कि उस संघर्ष का अपमान, ...उसका मजाक उड़ाने जैसा भी है। पर क्या करूँ, कहानी जो कहने जा रहा हूँ-दूसरी है।

दुकान के जरा जमते ही कुर्बान भाई ने अखबार मँगाना शुरू कर दिया। ठीका हो गया, पहनने को दो जोड़ी कपड़े हो गए, रोटेशन चल गया, गिराकी जम गई तो आगे ख्वाहिश कौन सी थी? बच्चे कोई जिए नहीं थें, शौक-मौज, सैर-सपाटा भूल ही चुके थे, मियाँ-बीवी दो जनों के लिए अल्लाह का दिया बहुत था... पत्रिकाएँ क्यों न मँगाते? और उस समय कोई पत्रिका आती तो बुकपोस्ट हो या वी.पी., उसे लेने कुर्बान भाई खुद पोस्ट ऑफिस पहुँच जाते। पत्रिका को बड़े जतन से सँभालकर रखते और उसका पन्ना-पन्ना, हर्फ-हर्फ चाट जाते। कई-कई बार, जैसे किसी भूखे-प्यासे को छप्पन भोग मिल गए हों। अदब से अब भी इसी तरह मोहब्बत करते हैं। पत्रिकाएँ मँगाकर, खरीदकर पढ़ते हैं और उनकी फाइल हिफाजत से रखते हैं।

इसी सिलसिले में... उनके संस्कार बोलने लगे। लोगों ने देखा, यह शख्स कभी झूठ नहीं बोलता... ठगी-चार सौ बीसी नहीं करता... कम नहीं तौलता... अबे-तबे नहीं करता... गंदे मजाक नहीं करता... अदब से बोलता है और आड़े वक्त पर हरेक के काम आता है... हर काम में इसके एक नफासत... संस्कारिता छलकती है... इसलिए धीरे-धीरे कस्बे में प्रतिष्ठित लोग दुआ-सलाम करने लगे... व्यापारियों के यहाँ शादी-ब्याह कुछ होता... उनके कार्ड आने लगे। आकर्षित होकर खग के पास खग भी आने लगे। अब कुर्बान भाई उन्हें चाय पिला रहे हैं और ग्राहकी छोड़कर गालिब पर बहस कर रहे हैं।

आहिस्ता-आहिस्ता कुर्बान भाई की दुकान पढ़े-लिखों का अड्डा बन गई। लेक्चरर, अध्यापक, पत्रकार, पढ़ने-खिलने वाले। शाम होते ही कुर्बान भाई की दुकान ठहाकों और बहसों से गुलजार हो जाती। कुर्बान भाई आदाब अर्ज करते... चाय वाले को चाय के लिए आवाज लगाते हैं और टाट की कोई बोरी निकालकर चबूतरे पर बिछा देते। ग्राहकी भी चलती रहती, बहसों भी, ठहाके भी, और बीच-बीच में इसमें भी संकोच नहीं करते कि किसी को छाबड़ी पकड़ाकर दूर रखे थैले से किलो-भर साबुत मिर्च भरने में पिसे नामक की थैली निकाल देने या दस चीजों का टोटल मिला देने जैसा काम पकड़ा दें। बड़ा मजेदार दृश्य होता कि अंग्रेजी साहित्य का व्याख्याता सड़क पर खड़ा फटक-फटककर लहसुन के छिलके उड़ा रहा है या प्रांतीय अखबार का संवाददाता उकड़ूँ बैठकर चबूतरे के नीचे रखी बोरी से मुलतानी मिट्टी निकाल रहा है या इतिहास के वरिष्ठ अध्यापक...

हम लोगों के संपर्क से कुर्बान भाई बदलने लगे। उन्हें पहली बार महसूस हुआ कि उनकी एक अदबी शिखिसयत भी है। हमने उनसे उर्दू सीखी, उनकी लाइब्रेरी (जो काफी समृद्ध हो गई थी) को तरतीब दी, रिसालों की जिल्दें बनवाई और उस लाइब्रेरी का खूब लाभ उठाया। हम लोग कुर्बान भाई को पकड़-पकड़कर मुशायरों-नशिस्तों में ले जाने लगे। हमने उन्हें ऐसी पत्रिकाएँ दिखाई, जैसी उन्होंने पहले कभी देखी थीं... ऐसे लेखकों-कवियों के बारे में बताया जो सिर्फ उनकी कल्पना में ही थे... ऐसे शायरों की रचनाएँ सुनाई जो साकी-शराब वगैरह को कब का अलविदा कह चुके थे और ऐसी राजनीति से उनका परिचय कराया, जिसके बारे में उन्होंने अब तक सिर्फ उड़ती-उड़ती बातें ही सुनी थीं। उनके दिमाग में भी काफी मजहबी कबाड़ भरा हुआ था, शुरू से प्रबुद्ध होने के बावजूद, हम झाड़ू लेकर पिल पड़े... हमने उन्हें अखबार और विचार का चस्का लगा दिया, जैसा पहले किसी ने करना जरूरी नहीं समझा था।

नतीजा यह निकला कि वे हफ्ते में एक रोज छुट्टी रखने लगे, रात को खाने के बाद हमारे साथ घूमने जाने लगे... अपने अतीत के बारे में सोच-सोचकर गुस्से में भरे रहने की बजाय भविष्य की तरफ देखकर कभी-कभी चहकने भी लगे और हमारे नजदीक से नजदीकतर होने लगे। एक नए किस्म का लौंडापन उन पर चढ़ने लगा। उन्हें हमारी लत पढ़ने लगी। वे हमारा हर शाम इंतजार करते और हम नहीं पहुँच पाते तो वे खुद हमारे घर आ जाते।

अब हुआ यह भी कि कस्बे के शरीफ और प्रतिष्ठित व्यक्ति होने की कुर्बान भाई की ख्याति से हमें लाभ न हुआ हो, हमारी बदनामी की लपेट में वे भी आने लगे। जिस

परिमाण में कुर्बान भाई का जो समय हमें मिलता, उसी परिमाण में वह उनके पुराने दोस्तों-लतीफ साहब, हाजी साहब, इमाम साहब वगैरह के हिस्से से कम हो जाता। नमाज पढ़ने वे सिर्फ शुक्रवार को जाते थे, अब वह भी बंद कर दिया। वाज वगैरह में चलने को कोई पहले भी उनसे नहीं कहता था, अब भी नहीं कहता। मद्रसे को पहले भी चंदा देते थे, अब भी देते। हाँ, कभी-कभी होने वाली राजनीतिक सभाओं में जाने को और कस्बे की राजनीति में दिलचस्पी लेने को उनके लिए खतरनाक समझकर बिरादरी वाले उन्हें टोकने जरूर लगे। पॉलिटिक्स अपने लोगों के लिए नहीं है, समझे? चुपचाप सालन-रोटी खाओ और अल्लाह का नाम लो। चैन से जीना है तो इन लफड़ों में मत पड़ो। बेकार कभी धर लिए जाओगे... हमें भी फँसवाओगे। अब यहाँ रहना ही है तो... पानी में रहकर मगरमच्छों को मुँह चिढ़ाने से क्या फायदा?

लेकिन अपनी मस्ती में मस्त थे हम लोग। न हमें पता चला न खुद कुर्बान भाई को कि उन्हें झमामबाड़े वाले ही नहीं, शाखा वाले भी घूरते हुए निकलने लगे हैं। शाम को उनकी दुकान पर आने वाले कुछ देशप्रेमी किस्म के लोगों की सतत अनुपस्थिति का गूढार्थ भी हमने नहीं समझा। इसलिए आखिर वह घटना हो गई जिसने इस कहानी को एक ऐसे अप्रिय मुकाम तक पहुँचा दिया जो मन को कड़वाहट से भर देता है।

एक दिन दोपहर की बात है। एक बैलगाड़ी वाले ने ठीक उनकी दुकान के सामने गाड़ी रोकी। बैल खोले और गाड़ी का अगला हिस्सा कुर्बान भाई के चबूतरे पर टिका दिया। गाँव से आने वाले इसी चौक में गाड़ियाँ खड़ी करते हैं, बैल खोलते हैं और उन्हें चारा डालकर अपना काम-काज निपटाने चले जाते हैं। शाम को लौटते हैं और जोतकर चले जाते हैं। लेकिन वे गाड़ी किसी की दुकान के ऐन सामने खड़ी नहीं करते और किसी के चबूतरे पर रखने का तो सवाल ही नहीं उठता। इस शख्स ने तो इस तरह गाड़ी खड़ी की थी कि अब कोई ग्राहक कुर्बान भाई की दुकान तक पहुँच ही नहीं सकता था, बल्कि वे खुद भी पड़ोसी के चबूतरे पर से हुए बिना नीचे नहीं उतर सकते थे। गाड़ी वाला वकील ऊखचंद का हाली था और कुर्बान भाई को मालूम था कि अभी वह गाड़ी खड़ी करके गया और शाम को ही लौटेगा। कुर्बान भाई ने उससे गाड़ी जरा बाजू में खड़ी करने और बैलों को किनारे बाँध देने को कहा। उसने अनसुनी कर दी। कुर्बान भाई ने फिर कहा तो एक नजर उन्हें देखकर अपने रास्ते चल पड़ा। कुर्बान भाई ने खुद उठकर चबूतरे पर टिके उसकी गाड़ी के अगले छोर को उठाया और गाड़ी को धकाकर... लेकिन तभी उस आदमी ने कुर्बान भाई का गरेबान पकड़ लिया और गालियाँ बकने लगा। और कुर्बान भाई का चश्मा नोच लिया और धक्का-मुक्की करने लगा। ठीक इसी

समय कोर्ट से लौटते वकील ऊखचंद उधर से गुजरे और उन्होंने आवाज मारकर पूछा, 'क्या हुआ रे गोम्या?' गोम्या बोला, 'म्हने कूटै!' यानी मुझे मार रहा है। वकील ऊखचंद ने पूछा, 'कौन?' गोम्या बोला, 'ये मीयों!'

कुर्बान भाई सन्न रह गए। बात समझ में आते-आते भीतर हचमचा गए। आँखों के आगे तारे नाचने लगे। वहीं जमीन पर उकड़ूँ बैठ गए और सिर पकड़ लिया। अंधेरे का एक ठोस गोला कलेजे से उठा और हलक में आकर फँस गया। बरसों से जमी रुलाई एक साथ फूट पड़ने को जोर मारने लगी।

...यह क्या हुआ? ...कैसे हुआ? क्या गोम्या उन्हें जानता नहीं? एक ही मिनट में वह 'कुर्बान भाई' से 'मियाँ' कैसे बन गए? एक मिनट भी नहीं लगा! बरसों से तिल-तिल मरकर जो प्रतिष्ठा उन्होंने बनाई... हर दिन हर पल जैसे एक अग्नि-परीक्षा से गुजरकर, जो सम्मान, जो प्यार अर्जित किया... हर दिन खुद को समझाकर... कि पाकिस्तान जाकर भी कोई नवाबी नहीं मिल जाती... जैसे हैं यहीं मस्त हैं... अल्लाह सब देखता है... जाने दो जोश को, डूबने दो सुरैया का सितारा... भुला देने दो दोस्तों को... लुट जाने दो कारोबार को... झूठे बदमाशों के कब्जे में चली जाने दो हवेलियाँ... गुमनाम पड़ी रहने दो भाइयों की कब्रें... दफना दो भरे-पूरे घर का सपना... शायद कभी फिर अपना भी दिन आए... तब तक सब्र कर लो... क्या-क्या कीमत रोज चुकाकर कस्बे में थोड़ा सा अपनापन... थोड़ी सी सामाजिक सुरक्षा... थोड़ा सा आत्मविश्वास.... थोड़ी सी सहजता उन्होंने अर्जित की थी... और कितनी बड़ी दौलत समझ रहे थे इसको... और लो! तिल-तिल करके बना पहाड़ एक फूँक में उड़ गया! एक जाहिल आदमी... लेकिन जाहिल वो है या मैं? मैं एक मिनट-भर में 'कुर्बान भाई' से 'मियाँ' हो जाऊँगा, यह कभी सोचा क्यों नहीं? अपनी मेहनत का खाते हैं। फिर भी ये लोग हमें अपनी छाती का बोझ ही समझते हैं। यह बात कभी नजर क्यों नहीं आई? पाकिस्तान चले जाते... तो लाख गुर्बत बर्दाश्त कर लेते... कम से कम ऐसी ओछी बात तो नहीं सुननी पड़ती। हैफ है! धिक्कार है! लानत है ऐसी जिंदगी पर!

अल्लाह! या अल्लाह!!

वकील ऊखाचंद गोम्या हाली को समझाते-बुझाते साथ ले गए। गाड़ी-बैल वहीं छोड़ गए। अड़ोसियों-पड़ोसियों ने कुर्बान भाई को सँभाला। उनकी बत्तीसी भिंच गई थी और होंठों के कोनों से झाग निकल रहे थे। लोगों ने गाड़ी-बैल हटाए। कुर्बान भाई को चबूतरे पर लिटाया! हवा की! मुँह पर ठंडे पानी के छींटे दिए। वकील ऊखाचंद को गालियाँ दीं। कुर्बान भाई को आश्वस्त करने का प्रयत्न किया। उन्हें क्या मालूम था,

कुर्बान भाई के भीतर क्या टूट गया? अभी-अभी। जिसे उन्होंने इतने बरस नहीं टूटने दिया था। अंदर की चोट दिखाई कहाँ देती है?

लोग इकट्ठे हो गए। सारे कस्बे में खबर फैल गई। जिस-जिस को पता चलता गया, आता गया। हम लोग भी पहुँच गए। अब बीसियों लोग थे और बीसियों बातें। काफी देर फन्नाने-फुफकारने के बाद तय हुआ कि यह बदतमीजी चुपचाप बर्दाश्त नहीं करनी चाहिए। थाने में रपट लिखानी चाहिए।

लिहाजा चला जुलूस थाने। ...पर रास्ते में किसी को पेशाब लग गया, किसी को हगासा। थाने पहुँचते-पहुँचते सिर्फ हम लोग रह गए कुर्बान भाई के साथ!

थानेदार नहीं थे। अभी-अभी मोटर साइकिल लेकर कहीं निकल गए। मुंशी था। मुंशी ने रपट लिखने से साफ इंकार कर दिया। क्यों न करता? थानेदार के पास पहले ही वकील ऊखचंद का टेलीफोन आ चुका था। वकील ऊखचंद सत्ता पार्टी के जिला मंत्री थे। कुर्बान भाई कौन थे? हम लोग कौन थे?

आधे घंटे तक हुज्जत और डेढ़ घंटे तक थानेदार की प्रतीक्षा करने के बाद अपना सा मुँह लेकर लौट आए। शाम को फिर आएँगे। शाम को हम लोगों के सिवा दुकान पर कोई नहीं पहुँचा। और हम लोगों के साथ थाने चलने का जरा भी उत्साह कुर्बान भाई ने नहीं दिखाया। दुकानदारी ने उन्हें जैसे एकदम व्यस्त कर लिया, जैसे हमसे बात करने का भी समय नहीं।

एक अपराध-बोध के तहत हम भी कुर्बान भाई से कटे-कटे रहने लगे। हालाँकि घटना इतनी बड़ी नहीं थी, जिसे तूल दिया जाए। थानेदार तो क्या... कोई भी होता.... खुद पुलिस-उलिस के चक्कर में पड़ने के बजाय जो हो गया, उसे एक जाहिल आदमी की मूर्खता मानकर भूल जाने को तैयार हो जाता। पर हम... हमें लग रहा था... हमारे दोस्त पर हमला हुआ और हम कुछ नहीं कर सके, किसी काम नहीं आ सके। यह भी लग रहा था कि ज्यादा उत्साह दिखाया तो कुर्बान भाई के लिए और मुसीबतें खड़ी हो जाएँगी, हम कुछ नहीं कर पाएँगे। यह भी लग रहा था कि जो हुआ, उसमें पुलिस से हस्तक्षेप और सहायता की उम्मीद बेकार है। इसका मुकाबला राजनीतिक स्तर पर ही किया जा सकता है, जिसके लिए जल्दी से जल्दी अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिए, पाँच से पचास हो जाना चाहिए।

लेकिन यह सब बहानेबाजी थी। सच यह है कि कुर्बान भाई को एकदम अकेला छोड़ दिया था। शायद हम उनकी तकलीफ को शेयर कर ही नहीं सकते थे, पर हमें

कोशिश जरूर करनी चाहिए थी।

कुर्बान भाई की दुकान पर कई दिन पहले का सा रंगतदार जमावड़ा नहीं हुआ। वह बुझे-बुझे से रहते थे, बहुत कम बोलते थे और हमें देखते ही दुकानदारी में व्यस्त हो जाते थे। वे घुट रहे थे और घुल रहे थे... पर खुल नहीं रहे थे। हम उन्हें नहीं खोल पाए। एक दिन जब मैं पहुँचा, मेरी तरफ उनकी पीठ थी, किसी से कह रहे थे—आप क्या खाक हिस्ट्री पढ़ाते हैं? कह रहे हैं पार्टीशन हुआ था! हुआ था नहीं, हो रहा है, जारी है... और मुझे देखते ही चुप होकर काम में लग गए।

इस कहानी का अंत अच्छा नहीं है। मैं चाहता हूँ कि आप उसे नहीं पढ़ें। और पढ़ें तो यह जरूर सोचें कि क्या इसका कोई और अंत हो सकता था? अच्छा अंत? अगर हाँ, तो कैसे?

बात बस यह बची है कि कई दिन बाद जब एक दोपहर मैं आजाद चौक से गुजर रहा था—जिसका नाम अब संजय चौक कर दिया गया था—और वह शुक्रवार का दिन था—मैंने देखा कि कुर्बान भाई की दुकान के सामने लतीफ भाई खड़े हैं...। और कुर्बान भाई दुकान में ताला लगा रहे हैं। ...और उन्होंने टोपी पहन रखी है... और फिर दोनों मस्जिद की तरफ चल दिए हैं।

स्वयं प्रकाश

जन्म	: 2 जनवरी, 1947
प्रकाशन	: मात्रा और भार, सूरज कब निकलेगा, आसमां कैसे कैसे, अगली किताब, आएँगे अच्छे दिन भी, आदमी जात का आदमी, चर्चित कहानियाँ, अगले जनम, आधी सदी का सफरनामा, पार्टीशन (कहानी संग्रह) चलते जहाज पर, बीच में विनय, उत्तर जीवन कथा, ईंधन, ज्योति, रथ के सारथी (उपन्यास) स्वातः सुखाय, दूसरा पहलू, रंगशाला में एक दोपहर (निबंध संग्रह) फीनिक्स नाटक
सम्मान	: राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार, वनमाली स्मृति पुरस्कार, सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार, पहल सम्मान

तिरिछ

—उदय प्रकाश

इस घटना का संबंध पिताजी से है। मेरे सपने से है और शहर से भी है। शहर के प्रति जो एक जन्म-जात भय होता है, उससे भी है।

पिताजी तब पचपन साल के हुए थे। दुबला शरीर। बाल बिल्कुल मक्के के भुए जैसे सफेद। सिर पर जैसे रुई रखी हो। वे सोचते ज्यादा थे—बोलते बहुत कम। जब बोलते तो हमें राहत मिलती, जैसे देर से रुकी हुई साँस निकल रही हो। साथ-साथ हमें डर भी लगता। हम बच्चों के लिए वे एक बहुत बड़ा रहस्य थे। हमें पता था कि संसार के सारे ज्ञान की तिजोरी उनके पास है। हम जानते थे कि संसार की सारी भाषाएँ वे बोल सकते हैं। दुनिया उनको जानती है और हमारी तरह ही उनसे डरती हुई उनका सम्मान करती है।

हमें उनकी संतान होने का गर्व था।

कभी-कभी, वैसे ऐसा सालों में एकाध बार ही होता, वे शाम को हमें अपने साथ टहलाने कहीं बाहर ले जाते। चलने से पहले वे मुँह में तंबाकू भर लेते। तंबाकू के कारण वे कुछ बोल नहीं पाते थे। वे चुप रहते। यह चुप्पी हमें बहुत गंभीर, गौरवशाली, आश्चर्यजनक और भारी-भरकम लगती। छोटी बहन कभी उनसे रास्ते में कुछ पूछना चाहती तो फौरन मैं उसका जवाब देने की कोशिश करता, जिससे पिताजी को न बोलना पड़े।

वैसे यह काम काफी मुश्किल और जोखिम भरा होता। क्योंकि मैं जानता था कि अगर मेरा जवाब गलत हुआ तो पिताजी को बोलना पड़ जाएगा। बोलने में उन्हें परेशानी